

## पाकिस्तान में लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ : सेना का सन्दर्भ

कृष्ण कुमार सिंह<sup>1</sup>

<sup>1</sup>अतिथि शिक्षक, राजनीतिशास्त्र विभाग, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय फाफामऊ, इलाहाबाद, उ०प्र०, भारत

### ABSTRACT

भारत के धार्मिक विभाजन के फलस्वरूप अगस्त 1947 में पाकिस्तान अस्तित्व में आया। अपने 68 वर्षों के इतिहास में पाकिस्तान लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हेतु संघर्ष करता रहा है। लोकतंत्र का अर्थ एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या तो अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन किया जाता है। लोकतंत्र में नागरिक अधिकारों एवं सामाजिक न्याय पर विशेष बल दिया जाता है। सरकार जनमत का सम्मान करती है तथा शासन का संचालन जनहित में होता है। पाकिस्तान में लोकतंत्र को कभी मजबूत होने का अवसर नहीं मिला। सन् 1958 से एवं समय-समय पर समयावधिक रूप से आने वाले सैनिक शासन से लोकतंत्र संघर्ष करता रहा है। सैन्य शासन की अवधि में जनता को स्वतंत्रता एवं राजनीतिक गतिविधियों का अधिकार नहीं दिया गया और सेना द्वारा संविधान को कुचल दिया गया।

**KEY WORDS:** पाकिस्तान, लोकतंत्र, सैन्य शासन, साम्रदायिकता

पाकिस्तान के बनने के बाद की परिस्थितियाँ वहाँ पर लोकतंत्र की स्थापना के अनुकूल नहीं थीं। विभाजन, साम्रदायिक हत्याओं तथा अक्टूबर 1947 में कश्मीर को लेकर हुए युद्ध से वहाँ पर भारत की छवि एक शत्रु एवं खतरे के रूप में बनी। पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के कुछ वर्ष बाद ही वहाँ पर 'नेतृत्व का संकट' उत्पन्न हो गया क्योंकि जल्द ही वहाँ के दोनों प्रमुख नेताओं, राज्य के संस्थापक तथा प्रथम गवर्नर जनरल मोहम्मद अली जिन्नाह (सितम्बर 1948) एवं प्रथम प्रधानमंत्री लियाकत अली खाँ (अक्टूबर 1951) की मृत्यु हो गई। वास्तविकता यही है कि जिन्नाह एवं लियाकत अली भी लोकतांत्रिक संस्थाओं एवं राजनीतिज्ञों को अधिक महत्व नहीं देते थे। (कुकरेजा, 2003 पृ०9-10) यद्यपि आम धारणा यही रही है कि यदि ये लोग अधिक समय तक जीवित रहते तो वहाँ पर लोकतांत्रिक संस्थाएं मजबूत होतीं।

लियाकत अली की मृत्यु के बाद शक्ति राजनेताओं के हाथ से निकल कर नौकरशाही एवं सैनिक नेताओं के पास चली गई। लियाकत के बाद सत्ता में आने वाले लोग जैसे - मलिक गुलाम मोहम्मद, चौधरी मोहम्मद अली और ईस्कन्दर मिर्जा आदि जनता या लोकतांत्रिक संस्थाओं में तनिक भी विश्वास नहीं करते थे। 1954 में जब राजनीतिज्ञों ने गवर्नर जनरल की शक्तियों में कमी करके नौकरशाही-सेना धुरी से शक्तियाँ लेने की कोशिश की और संविधान का एक ऐसा प्रस्ताव तैयार किया जिसमें गवर्नर जनरल को राज्य का औपचारिक प्रधान बनाने तथा ब्रिटिश संसदीय शासन प्रणाली लागू करने का प्रस्ताव था तब गवर्नर जनरल ने बदला लेते हुए संविधान सभा को विघटित कर दिया और सरकार को हटा दिया। इस पूरे घटनाक्रम से यह

सिद्ध हो गया कि पाकिस्तान में लोकतंत्र की रथापना की राह बहुत कठिन है।

23 मार्च 1956 को संविधान सभा ने पाकिस्तान का पहला संविधान अनुमोदित किया जिसमें पाकिस्तान का नाम 'पाकिस्तान इस्लामी गणराज्य' रखा गया था। भूतपूर्व सैनिक अधिकारी मेजर जनरल ईस्कन्दर मिर्जा नवीन संविधान के अनुसार राष्ट्रपति बने। 7 अक्टूबर 1958 को मिर्जा ने सेना के समर्थन से 1956 के संविधान को निलंबित कर मार्शल लॉ लगा दिया और जनवरी 1959 में होने वाले चुनावों के कार्यक्रम को निरस्त कर दिया। बीस दिन बाद ही सेना ने मिर्जा को निर्वासित कर दिया और सेना प्रमुख फील्ड मार्शल मुहम्मद अयूब खान ने राज्य सत्ता पर कब्जा कर लिया। (खान, 1985 पृ०69-89) इस प्रकार पाकिस्तान में सैन्य शासन के एक लम्बे दौर (1958-71) का आरंभ हुआ और वहाँ पर लोकतंत्र की स्थापना की आशा समाप्त हो गई। यद्यपि 1947-58 तक की अवधि में शासन का स्वरूप संसदीय सरकार की तरह का था परंतु इसे वास्तव में लोकतांत्रिक शासन बताना बहुत कठिन है क्योंकि इस पूरे काल में लोकतंत्र की आत्मा 'आम चुनाव' तथा राजनीतिक दलों की सक्रियता का अभाव रहा।

मार्च 1969 को सेना प्रमुख जनरल यहया खान ने राष्ट्रपति फील्ड मार्शल अयूब खान को हटा दिया, साथ ही मार्शल लॉ लगाते हुए राष्ट्रीय सभा एवं प्रांतीय विधानसभाओं को भंग कर दिया। पाकिस्तान में लोकतंत्र की स्थिति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वहाँ पर पहला आम चुनाव 1970 में ही हो सका। परन्तु इसके परिणामों को मानने से इनकार करते हुए यहया खान ने पूर्वी पाकिस्तान में अमानवीय अत्याचार शुरू करवाये। दिसंबर 1971 में भारत एवं बांग्लादेश मुकितवाहिनी की संयुक्त कमान से पाकिस्तानी सेना

की बहुत बड़ी हार हुई। इसके बाद पाकिस्तान का विभाजन हो गया और पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश नामक स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया।

युद्ध में हार के बाद सत्ता जनरल यहया खान के हाथ से निकल गई और राजनेता जुलिफ्कार अली भट्टो को सत्ता मिली। 10 अप्रैल, 1973 को पाकिस्तान के नये संविधान को संसद ने अनुमोदित किया। इस संविधान ने पाकिस्तान में संसदीय लोकतंत्र की पुनर्बहाली की। 5 जुलाई, 1977 को सैनिक विद्रोह के माध्यम से सेनाध्यक्ष जनरल जिया—उल—हक ने सैन्य शासन की स्थापना की। अगस्त 1988 में जनरल हक की मृत्यु के बाद वहाँ पर लोकतंत्र की पुनर्बहाली हुई। पाकिस्तान में लोकतंत्र के तीसरे चरण (1988–1999) की विशेषता यह रही कि इस काल में दो राजनीतिक दलों – पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी एवं पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज) के मध्य राजनीतिक सत्ता चुनावों के माध्यम से हस्तांतरित होती रही। 12 अक्टूबर 1999 को सेना प्रमुख जनरल परवेज मुशर्रफ ने नवाज शरीफ की नागरिक सरकार को हटा दिया। (टाइम्स ऑफ इण्डिया, 13 अक्टूबर 2019) जनरल मुशर्रफ के सैनिक शासन (1999–2008) के दौरान लोकतंत्र के प्रत्येक स्तम्भ को कमजोर किया गया।

पाकिस्तान में लोकतंत्र की पुनर्बहाली हेतु प्रयासों का दौर सन् 2007 से शुरू हुआ और अन्त में फरवरी 2008 में चुनाव के बाद एक नागरिक सरकार का गठन हुआ। अगस्त 2008 में जनरल परवेज मुशर्रफ ने राष्ट्रपति का पद छोड़ दिया और सितम्बर 2008 में पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के आसिफ अली जरदारी राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। इस प्रकार पाकिस्तान में सैन्य शासन की समाप्ति एवं लोकतंत्र की पुनर्बहाली का कार्य पूरा हुआ। मार्च 2009 में आपातकाल में बर्खास्त सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इफितखार मोहम्मद चौधरी एवं अन्य न्यायाधीशों को पद पर पुनर्स्थापित किया गया। इस घटना ने यह विश्वास दिलाया कि अब पाकिस्तान में लोकतंत्र के सशक्त होने की पूरी संभावना है क्योंकि स्वतंत्र न्यायपालिका ही लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा कर सकती है। सन् 2013 का वर्ष पाकिस्तानी लोकतंत्र के इतिहास में मील का पत्थर माना जाता है क्योंकि पाकिस्तान के इतिहास में यह पहली बार हुआ कि एक निर्वाचित नागरिक सरकार ने अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा करके सत्ता दूसरी निर्वाचित नागरिक सरकार को सौंप दिया। (मलिक, 2014 पृ० 177) जून, 2013 से वहाँ पर नवाज शरीफ की सरकार काम कर रही है।

पाकिस्तान में लोकतंत्र के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि वहाँ पर लोकतंत्र की स्थिति संतोषजनक नहीं है। पाकिस्तान में लोकतंत्र को विभिन्न प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सेना, प्रजातीय

भेदभाव, सामाजिक अन्याय, अशिक्षा, गरीबी, आतंकवाद आदि पाकिस्तानी लोकतंत्र के समक्ष प्रमुख समस्याएं हैं। पाकिस्तान में लोकतंत्र एवं लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के लिए सबसे गंभीर चुनौती वहाँ की सेना है। इस देश के इतिहास में लगभग आधे समय (32 वर्ष) तक राजनीतिक सत्ता के गलियारों में फौजी बूटों की आवाज गूंजती रही है। वहाँ पर लोकतंत्र एवं सैन्यतंत्र के मध्य लगातार लुका-छिपी का खेल चलता रहा है। सन् 1947–58, 1971–77, 1988–99, 2008 से अब तक (अर्थात दिसम्बर 2015 तक) की अवधि में सत्ता जनप्रतिनिधियों के हाथ में रही है तथा 1958–71, 1977–88 एवं 1999–2008 तक की अवधि में वहाँ पर सैनिक शासन था। वह पाकिस्तान बनने के कुछ ही समय के बाद उसके दोनों प्रमुख राजनीतिक नेताओं की मृत्यु हो गई जिसकी वजह से वहाँ राजनीतिक अस्थिरता का माहौल पैदा हो गया। स्वस्थ राजनीतिक परंपराओं के अभाव तथा स्वार्थी एवं अदूरदर्शी राजनेताओं के क्रियाकलापों से देश राजनीतिक अस्थिरता के दुष्क्रम में उलझ गया। इस प्रक्रिया में नौकरशाही मजबूत हुई और सेना की महत्ता बढ़ती गई। 1958 में ईस्कंदर मिर्जा ने सेना के दबाव में राष्ट्रपति का पद त्याग दिया और सेनाध्यक्ष फील्ड मार्शल अयूब खान ने सत्ता संभाल ली। उन्होंने देश में मार्शल लॉ लागू कर दिया। अयूब खान ने पाकिस्तान को 'आधारभूत लोकतंत्र' (Basic Democracy) का विचार दिया और उसी के अनुरूप चुनाव कराकर देश का राष्ट्रपति पद हथिया लिया। अयूब खान के कार्यकाल से देश की सत्ता पर सेना का जो वर्चस्व स्थापित हुआ वह आज तक बना हुआ है।

बीसवीं शताब्दी में सशस्त्र बल किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक व्यवस्था का अंग बन चुके हैं तथा अब वह राजनीति से पूरी तरह से अलग नहीं है। दक्षिण एशिया के कई देशों में सेना समय-समय पर लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीच में आ गई है। यद्यपि भारत में आजादी के बाद से अब तक सेना ने हस्तक्षेप का मार्ग नहीं अपनाया है। भारत में इन्हें लोकतांत्रिक सरकार के यंत्र के रूप में देखा जाता है। बांग्लादेश, श्रीलंका एवं नेपाल में स्थिति इससे आगे की रही है। पाकिस्तान में सेना अपने को पाकिस्तानी विचारधारा का संरक्षक समझती रही है तथा जनता ने भी पाकिस्तानी सेना की इस भूमिका को स्वीकार कर लिया है। यही कारण है कि अपने अस्तित्व के लगभग आधे समय तक पाकिस्तान सैन्य प्रशासन के अन्तर्गत रहा है और जब-जब वहाँ पर लोकतंत्रीय शासन आया है उसमें भी सेना एक दृढ़ स्तम्भ के रूप में रही है।

अब तक चार अवसरों - अक्टूबर 1958, मार्च 1969, जुलाई 1977 तथा अक्टूबर 1999 में सेना ने प्रत्यक्ष कार्यवाही की है एवं अपनी कार्यवाही का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश की है। पाकिस्तान में सेना ही राज्य का अंतिम निर्णायक तत्व है। 1947 से अक्टूबर 1958 तक सेना ने गुप्त

रहकर नीति निर्माण को प्रभावित किया। शरणार्थी समस्या, प्राकृतिक आपदाओं आदि में इसने सरकार का साथ दिया। 1958 में फील्ड मार्शल अयूब खान के नेतृत्व में जो सैनिक क्रान्ति आयी उसमें अमरीका का महत्वपूर्ण हाथ था। जनरल यहया खाँ का मार्शल लॉ प्रशासन बंगाली राष्ट्रवाद को रोकने में असफल रहा। सेना की निर्दयता, अत्याचार एवं हिंसा देश के पूर्वी भाग में अपनी सारी सीमाएं लांघ गया। भारत एवं बांग्लादेश मुक्ति वाहिनी की संयुक्त कमान से करारी हार एवं बांग्लादेश की स्थापना (1971) के कारण सेना का मनोबल गिरा। जुलिफकार अली भुट्टो पाकिस्तान के राष्ट्रपति बने। शीघ्र ही उन्हें भी शांति व्यवस्था के लिए सेना पर आश्रित होना पड़ा। जुलाई 1972 से जून 1974 के मध्य पाँच बार सेना को कानून - व्यवस्था के नाम पर बुलाना पड़ा। बलूचिस्तान में अलगाववाद से निपटने के लिए की गई सैन्य कार्यवाही में केवल सत्रह महीनों में लगभग दस हजार आदमी मारे गये। 1977 के चुनावों में, जिसमें बड़ी धांधली की शिकायतें मिली थीं, कराची, हैदराबाद तथा लाहौर में मार्शल लॉ लगाना पड़ा एवं सिंध में नियंत्रण के लिए सेना बुलानी पड़ी। (लैम्ब, 1991 पृ० 276)

जिया-उल-हक के शासनकाल में सेना ने संवैधानिक आधार प्राप्त कर लिया जिससे वह पाकिस्तान में एक वैध राजनीतिक दलाली का काम कर सके। संविधान में आठवां संशोधन इसका संकेत था। ऐसा माना जाता है कि नागरिक शासन के दौरान भी राजनेताओं को सेना से समझौता करना पड़ा जिससे सेना से सम्बन्धित मामले सेना के द्वारा ही तय हो सके। (कुकरेजा 1990 पृ० 164-165) इस तरह सैनिक शासन की अनुपस्थिति में भी सेना गुप्त शक्ति का प्रयोग करती रही है। पाकिस्तान का यह इतिहास रहा है कि वहां गैर सैनिक राष्ट्राध्यक्ष और निर्वाचित प्रधानमंत्री होने के समय भी सेनाध्यक्ष सत्ता के त्रिपक्षीय संतुलन में शामिल होता है। इस त्रिकोणीय व्यवस्था में भी सैन्य प्रमुख की भूमिका निर्णायक होती है, उदारण के लिए सन् 1990 में सेनाध्यक्ष जनरल असलम बेग ने राष्ट्रपति गुलाम इसहाक खान द्वारा प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो को बर्खास्त करा दिया था। जब 1997 में राष्ट्रपति लेघारी एवं प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के बीच मतभेद उभरे तो सैन्य प्रमुख जहांगीर करामत ने प्रधानमंत्री का समर्थन किया और राष्ट्रपति इस्तीफा देने के लिए विवश हुए। (दैनिक जागरण, 24 जून 2007)

यद्यपि पाकिस्तानी सेना का प्रशिक्षण ब्रिटिश गैर राजनीतिक परम्परा के आधार पर हुई थी लेकिन ब्रिटिश काल में सेना को औपनिवेशिक हितों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मिला था जो अब पाकिस्तान बनने के बाद सेना को इस्लामी सिद्धान्तों एवं आदर्शों के अनुकूल अपने को ढालना था। (कोहेन, 1984) पाकिस्तान में सेना के वर्चस्व के कारणों में एक यह भी है कि शुरू से ही पंजाब का सेना में अप्रत्याशित बहुमत रहा है। सरकारी अनुमानों के अनुसार यह

लगभग 70 प्रतिशत है जबकि जनसंख्या में इसका प्रतिशत 56 है। पठानों का प्रतिशत सेना में 22 से 25 है जबकि इनकी जनसंख्या 16 प्रतिशत है। सिंधी एवं बलूच का सेना में प्रतिनिधित्व अपनी आबादी की तुलना में बहुत कम है। सेना में व्याप्त इस असंतुलन ने सेना में केन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया है। जब कभी क्षेत्रीय अस्तित्व उभरीं तो राष्ट्रीय सुरक्षा का खतरा दिखाकर राजनीतिक अभिजनों ने सेना का प्रयोग कर उसे दबाया है।

स्टीफन पी. कोहेन ने अपने अध्ययन में पाकिस्तानी सेना के तीन महत्वपूर्ण युग दर्शाये हैं : ब्रिटिश पीढ़ी (1947-53), अमरीकी पीढ़ी (1954-71) तथा पाकिस्तानी पीढ़ी (1972 से अब तक)। तीसरी पीढ़ी में ग्रामीण एवं शहरी निम्नवर्ग के लोग आये क्योंकि नागरिक सेवाओं में रिक्तियाँ कम हुईं। इस प्रकार नये अधिकारी अधिक राजनीतिक एवं महत्वाकांक्षी थे।

पाकिस्तान के जन्म के बाद से बाहरी सुरक्षा के बातावरण ने भी रक्षा मंत्रालय तथा सेना मुख्यालय को कमज़ोर संसदीय संस्थाओं के मुकाबले मजबूत किया। सेना ने इस बात को भी फैलाने में सफलता प्राप्त की कि विभाजन के बावजूद भारत पाकिस्तान के विचार से सहमत नहीं है तथा पहला अवसर मिलते ही पाकिस्तान को नष्ट कर देगा। (चीमा, 1990 पृ० 1) इस बात की पुष्टि सन् 2007 में एक बार फिर हुई जब पूर्व विदेश सचिव आफिस अली एवं राजनीतिज्ञ इमरान खान से यह सवाल किया गया कि लोकतंत्र की बहाली के बावजूद ऐसा क्यों होता है कि सेना जब चाहे सत्ता हथिया लेती है ? दोनों ने भारत को दोष देते हुए यह तर्क दिया कि उसकी पाकिस्तान के विरुद्ध बैर भावना ने ही पाकिस्तान को अपनी सुरक्षा और पहचान की रक्षाधी सेना पर निर्भर कर दिया है। (दैनिक जागरण, 9 मई 2007) इन सब तथ्यों या कारणों से पाकिस्तान का रक्षा बजट बराबर बढ़ता ही रहा। 1947-58 की अवधि के मध्य यह देश के सम्पूर्ण राजस्व का 55 से 60 प्रतिशत था। इसी प्रकार 1972 तथा 1977 के मध्य भी सैन्य बलों की संख्या एवं खर्चों में भारी वृद्धि दर्ज की गई। सेना के मजबूत होने का कारण यह भी है कि पाकिस्तान ने हथियारों की राजनीति को वर्चस्व प्रदान किया तथा संयुक्त राज्य अमरीका से अपने सम्बन्ध बढ़ाये। 1954 की सिएटो एवं 1955 का सेन्ट्रो पाकिस्तान-अमरीका के बढ़ते सैन्य सम्बन्धों का प्रमुख उदाहरण है। परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान को सामाजिक सुरक्षा की कीमत पर वाह्य सुरक्षा पर खर्च को बढ़ाना पड़ा। इससे सामाजिक न्याय की नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन पर बहुत बुरा असर पड़ा जिससे पाकिस्तान में लोकतंत्र के सामाजिक आधार को व्यापक नहीं बनाया जा सका। इसका सबसे बड़ा दुष्प्रभाव यह पड़ा की जब भी सेना ने लोकतांत्रिक सरकारों को बेदखल करके सत्ता सूत्र संभाला तब इसका विरोध करने के लिए जनता आगे नहीं आयी।

1950 तथा 60 के दशक में जहाँ सेना आधुनिकीकरण के अभिकर्ता की भूमिका में थी वहीं 70 के दशक में पूर्वी पाकिस्तान तथा बलूचिस्तान में इसका प्रयोग जनता का दमन करने के लिए हुआ। 1980 के दशक में इसकी भूमिका पाकिस्तानी विचारधारा के संरक्षक की हो गई। धीरे-धीरे पाकिस्तान में सेना ने राजनीति और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी अपना प्रभुत्व स्थापित करना शुरू किया। सार्वजनिक एवं निजी उद्योगों में इसका अच्छा प्रतिनिधित्व है। जनरल जिया—उल—हक ने सरकारी सेवाओं में सेना के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था भी कर दी। यह कहा जाता है कि कुछ सेनाएं हैं जो अपने राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा करती हैं, कुछ सेनाएं हैं जो समाज में अपनी स्थिति की सुरक्षा करती हैं तो कुछ सेनाएं हैं जो किसी हित या विचारधारा की सुरक्षा करती हैं। पाकिस्तानी सेना यह तीनों काम करती है। (कोहेन, 1984 पृ0105)

पाकिस्तान में सैन्यतंत्र एवं लोकतंत्र के मध्य आँख-मिचौली का खेल होता रहा है। सभी लोकतंत्रिक परंपराओं को ध्वस्त करते हुए जो भी सेनाध्यक्ष सत्ता में आया उसने सबसे पहले मार्शल लॉ लगाने का काम किया। 1958 में जनरल अयूब खान ने एवं 1969 में जनरल यहया खँ ने सत्ता संभालते ही मार्शल लॉ लागू कर दिया। 1977 में जनरल जिया—उल—हक ने लोकतांत्रिक सरकार को अपदस्थ कर के सत्ता हाथ में ले ली और मार्शल लॉ लागू किया। जनरल परवेज मुशर्रफ ने 1999 में नवाज शरीफ की सरकार को अपदस्थ करके सत्ता पर कब्जा कर लिया था। उन्होंने भी संविधान स्थगित कर दिया और अपने लिए 'चीफ एकजीक्यूटिव' का अतिरिक्त पद भी सृजित कर लिया था। पाकिस्तान की सेना ने 1958, 1969, 1977 तथा 1999 में तख्ता पलट करने में तत्कालीन सैन्य प्रमुखों की सहयोगी शक्ति की भूमिका तो निभाई ही, ऐसे भी अवसरों की कमी नहीं है जब व्यक्तिगत या अधिकारियों के छाटे समूहों के स्तर पर बगावत के प्रयास हुए। 1950 में रावलपिंडी घड़्यंत्र से इसकी शुरूआत हुई थी। (सिंह, 2014 पृ030.31) स्पष्ट है कि पाकिस्तानी सेना लोकतंत्र के विचार को स्वीकार कर पाने में असमर्थ रही है तथा उसने समय-समय पर लोकतंत्र के आदर्श, मूल्य एवं मानकों को अपने फौजी बूटों तले रौंदने का कार्य बखूबी किया है।

अब यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि आखिर सेना सत्ता पर क्यों बार-बार कब्जा कर लेती है? यद्यपि सेना इसकी वजह राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता की रक्षा तथा शांति और स्थिरता की स्थापना बताती है परन्तु यह पूरी तरह सत्य नहीं है। पाकिस्तानी सेना की यह प्रकृति रही है कि वह आमतौर पर पदधारी सैन्य प्रमुख के प्रति निष्ठावान रहती है। जब सैन्य प्रमुख राष्ट्राध्यक्ष या सरकार के खिलाफ विद्रोह करते हैं तो वह यह कदम अपने सहयोगी कमांडरों से बातचीत करके ही उठाते हैं। चूंकि सैन्य कमांडरों को सेना

के शासन में व्यापक अधिकार, ताकत और धन-संपदा हासिल करने के अवसर मिलते हैं, इसलिए वे बगावत का साथ देने का फैसला करते हैं।

सेना द्वारा बार-बार निर्वाचित एवं नागरिक सरकारों का तख्तापलट करने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण सेना द्वारा बहुत बड़े स्तर पर औद्योगिक एवं व्यापारिक संस्थाओं का संचालन है। आयशा सिद्धिका अपनी पुस्तक 'मिलिटरी इंक: इनसाइड पाकिस्तांस मिलिटरी इकॉनमी' में यही स्थापना करती हैं कि पाकिस्तान में सेना केवल सेना नहीं है, वह एक बहुत बड़ी व्यापार और उद्योग संस्था भी है। सेना के ये वाणिज्यिक हित बहुत व्यापक हैं और इन्हे बचाने के लिए सेना का पाकिस्तान की राजनीति में हस्तक्षेप बहुत आवश्यक है। पाकिस्तान में सेना रक्षा बजट से प्राप्त होने वाली धनराशि पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि उसकी अपनी पूँजी है जिसके माध्यम से वह विभिन्न प्रकार के कारोबार चलाती है। पाकिस्तान में जिस सैन्य पूँजी की प्रमुखता है उसे 'मिलबस' का नाम दिया गया है जो मिलिटरी बिजनेस का संक्षिप्त रूप है। 'मिलबस' वह सैन्यपूँजी है जिसका उपयोग सैनिक वर्ग, विशेषकर कार्यरत और सेवानिवृत्त अधिकारियों के निजी फायदों के लिए होता है। इसका न कहीं व्योरा रखा जाता है और न ही वह रक्षा बजट का भाग है। इस प्रकार वह पूरी तरह स्वतंत्र पूँजी है। चूंकि सैन्य पूँजी सार्वजनिक दृष्टि से परे होती है इसलिए उसे सेना की आंतरिक अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है। इसके आकार एवं महत्व पर ही सैनिक अधिकारियों का राजनीति और राज्य की निर्णय लेने की प्रक्रिया में हस्तक्षेप निर्धारित होता है। यह हस्तक्षेप जितना अधिक होता है, सैन्य पूँजी उतनी ही सुरक्षित होती है और उसके फलने-फूलने के लिए उतने ही अवसर मिलते हैं। औपचारिक तौर पर कोई भी सरकार हो, शासन पर दबदबा सैन्य पूँजी का ही होता है। सैन्य पूँजी का वर्चस्व कायम होने पर सेना का मुख्य उद्देश्य अधिकतम मुनाफ कमाना हो जाता है। ऐसी स्थिति में उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह जनतंत्र को प्रभावकारी रूप से कायम होने देगी और कानून के शासन की पक्षधर बनेगी।

पाकिस्तानी सेना ने 1950 के दशक से ही अपना एक बड़ा व्यावसायिक साम्राज्य बनाया है। इसे मुख्य रूप से दो भागों में बॉट सकते हैं: पहले भाग में वे कारोबार आते हैं जिनका सम्बन्ध सीधे तौर पर सुरक्षा से है। दूसरे भाग में ऐसे कारोबार आते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध सुरक्षा से नहीं होता। इस भाग में होटल, नागरिक विमान सेवा, बैंक, बीमा, जमीन-जायदाद का धंधा, बेकरी, चीनी, कपड़ा सीमेंट, तेल उत्पादन से जुड़े कारोबार आते हैं। इतना ही नहीं पाकिस्तान में सैन्य पूँजी बड़े पैमाने पर खेती भी करती है। सरकार के पास जितनी जमीन है उसका लगभग बारह प्रतिशत हिस्सा सेना के पास है। इस जमीन का आधे से ज्यादा भाग सेना के अधिकारियों को दे दिया गया है। भारी विनिर्माण के एक

## सिंह : पाकिस्तान में लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ : सेना का सन्दर्भ

तिहाई पर सेना का अधिकार है। पाकिस्तान में सैन्य पूंजी की शुरुआत स्पष्ट रूप से 1954 में हुई जब पहला सैनिक कल्याण प्रतिष्ठान बना। अनेक वाणिज्यिक कंपनियों के अतंरिक्त सेना के चार बड़े कल्याण प्रतिष्ठान हैं : फौजी फाउंडेशन, आर्मी वेलफेयर ट्रस्ट, शाहीन फाउंडेशन और बहरिया फाउंडेशन। सेना की आंतरिक अर्थव्यवस्था इन प्रतिष्ठानों के दायरे के बाहर भी फैलती जा रही है। पारदर्शिता के अभाव में उसके इस फैलाव का सही—सही अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी दावे के साथ यह कहा जा सकता है कि पाकिस्तानी सेना का अपना कारोबार दस अरब डॉलर से कम नहीं है। सेना के नियंत्रण में कृषि, उत्पादन और सेवा क्षेत्र की लगभग 100 निगमित कंपनियाँ हैं जिसमें से केवल नौ अपने हिसाब—किताब को सार्वजनिक करती हैं। संसद को इन कंपनियों की जांच—पड़ताल से पूरी तरह बाहर रखा गया है।

जब किसी भी वर्ग के इतने विशेषाधिकार होंगे और इतना बड़ा व्यापारिक साम्राज्य होगा तो निश्चित ही वह वर्ग देश की राजनीति में अपना दखल रखेगा। राजनीतिक सत्ता से आर्थिक अधिकार बचाए और बढ़ाये जा सकते हैं और बढ़ती आर्थिक सत्ता से राजनीतिक सत्ता हथियाने में मदद मिल सकती है। पाकिस्तान का इतिहास इस बात का गवाह है। सैन्य शासकों ने सेना की आर्थिक सत्ता को सुदृढ़ करने की लगातार कोशिश की। वास्तव में जब तक सेना की आर्थिक शक्ति पर नियंत्रण नहीं लगेगा तब तक सेना किसी न किसी बहाने राजनीतिक सत्ता को हथियाने की कोशिश करती रहेगी। स्पष्ट है कि पाकिस्तान में लोकतंत्र की स्थापना तथा उसकी सुरक्षा हेतु वहाँ सैन्य पूंजी का वर्चस्व समाप्त होना आवश्यक है। (सिद्धिका, 2007)

सन् 2006 में लोकतंत्र की बहाली हेतु पाकिस्तान के राजनीतिक दलों ने संयुक्त प्रयास शुरू किया। पूर्व प्रधानमंत्रियों बेनजीर भुट्टो एवं नवाज शरीफ तथा अनेक छोटे दलों के नेताओं ने 'लोकतंत्र का घोषणापत्र' (Charter of Democracy) पर हस्ताक्षर किया जिसमें सैनिक शासन से किसी भी तरह के समन्वय की कोई संभावना नहीं थी। परंतु 2007 में स्वार्थवश बेनजीर भुट्टो राष्ट्रपति जनरल मुशर्रफ के साथ समझौते की कोशिशों का संकेत देने लगी। उन्होंने जनरल अथवा यह कहा जाय कि सेना के साथ कामचलाऊ व्यवस्था के विचार को कभी भी खरिज नहीं किया। विगत में (अपने प्रधानमंत्रीत्व काल में) उन्होंने सेना के साथ एक समझौता किया था। वास्तव में पाकिस्तान की स्थापना के समय से ही सेना उसका अभिन्न अंग है। हो सकता है कि बेनजीर को भी यह अहसास हो गया हो। यद्यपि नवाज शरीफ अन्त तक इस बात पर अड़े रहे कि सेना एवं राजनीति को परस्पर अलग—अलग होना चाहिए। लोकतंत्र की दृष्टि से यह मांग उचित प्रतीत होती है क्योंकि लोकतांत्रिक शासन में नीति निर्माण का काम जन प्रतिनिधियों का होता है और

इससे सेना को अलग रखा जाना चाहिए। नवाज शरीफ का यह कथन सही ही है कि 'सेना राजनीति से परे हो और बैरकों में ही रहे, जैसा भारत में है।' किंतु इसके लिए सशक्त संस्थानों एवं सुदीर्घ परंपरा की जरूरत है, जो पाकिस्तान में नहीं है। जब राजनेताओं का एक पैर सेना की नौका में हो और दूसरा नागरिक ढांचे में तो कोई भी संस्थान, यहाँ तक कि संविधान भी पवित्र नहीं रह सकता।

यद्यपि 2008 में लोकतंत्र की पुनर्बहाली के बाद पाकिस्तान में सेना ने प्रत्यक्ष रूप से शासन की शक्तियों को कभी भी ग्रहण नहीं किया परंतु इसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि सेना ने अपने आपको राजनीतिक मामलों से अलग कर लिया है। वास्तविकता यह है कि सेना ने नागरिक सरकारों के काल में भी पाकिस्तानी राजनीति पर अपने मजबूत नियंत्रण को बनाये रखा। (शाह, 2014) सन् 2009 में सर्वोच्च न्यायालय के बर्खास्त मुख्य न्यायाधीश इफितखार मोहम्मद चौधरी की पद पर पुनर्बहाली के मामले में तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल अशरफ परवेज कियानी ने निर्णयक भूमिका निभाई थी। मई 2011 के मेमोरेट काण्ड ने दर्शाया था कि पाकिस्तानी राजनीतिक नेतृत्व को सेना द्वारा सत्ता हथियाने की आशंका है। अभी भी पाकिस्तान में सेना राजनीतिक रूप से शक्तिशाली है विशेषकर सुरक्षा मामलों में। (मलिक, 2013 पृ० 177)

### निष्कर्ष :

पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के बाद से वहाँ पर 'संसदीय लोकतंत्र' को स्थापित करने का प्रयास किया गया परंतु इसमें अधिक सफलता नहीं मिल सकी। पाकिस्तान में लोकतंत्र को विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिससे वहाँ लोकतंत्र की स्थिति अच्छी नहीं है। वहाँ पर लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा वहाँ की सेना है। पाकिस्तान के इतिहास के लगभग आधे समय तक वहाँ पर लोकतंत्र का अभाव रहा एवं सैनिक शासन स्थापित रहा। अब तक चार बार सेना ने सैनिक विद्रोह के माध्यम से सत्ता पर अधिकार किया है एवं कई अवसरों पर नागरिक सरकार को हटाने का असफल प्रयास भी किया। पाकिस्तान में सेना के वाणिज्यिक हित बहुत व्यापक हैं और इन्हें सुरक्षित रखने के लिए सेना का राजनीति में हस्तक्षेप बहुत आवश्यक हो जाता है। वास्तव में, पाकिस्तान में सेना ही राज्य का अंतिम निर्णयक तत्व है। आज भी सेना राजनीति में बहुत प्रभावशाली है। वर्तमान नवाज शरीफ सरकार के काल में भी रक्षा एवं विदेश नीति का अंतिम निर्धारण सेना द्वारा ही किया जा रहा है जबकि लोकतंत्र में जनता एवं राज्य से संबंधित सभी नीतियों का निर्माण नागरिक सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

### सन्दर्भ

सिंह : पाकिस्तान में लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ : सेना का सन्दर्भ

Cheema, Parvaiz Iqbal (1990) *Pakistan's Defence Policy 1947-58*, London, Palgrave Macmillan

Cohen, Stephen P.(1984) *The Pakistan Army*, Karachi, Oxford University Press

सिद्धिका, आयशा,(2007) मिलिटरी इंकः इनसाइड पाकिस्तान मिलिटरी इकॉनमी लंदन., प्लूटो प्रेस,

Khan, Ashghar (edited),(1985) 'Islam, Politics and the State : The Pakistan Experience', London, Zed Publication,

Kukreja, Veena, 'Contemporary Pakistan : Political Processes, Conflicts and Crises', Sage Publications, New Delhi, 2003,P. 1.

Kukreja, Veena, Restoration of Democracy in Pakistan : one year of Benazir's Rule, *Strategic Analysis*, Vol. XII, No. 9

Kukreja, Veena,'Contemporary Pakistan : Political Processes, Conflicts and Crises, Sage Publications, New Delhi, 2003,Pp 9-10.

Lamb, Christina (1991), *Waiting for Allah : Pakistan's Struggle for Democracy*, New Delhi,Viking,

सुब्रहमण्यम्, के० , 'मुशरफ की मजबूरियाँ', दैनिक जागरण, 24 जून 2007, पृष्ठ 10

Malik, Anas (2013), Pakistan in 2013: A Milestone in Democratic Transition', *Asian Survey, Vol. 54, No. 1, Survey of Asia in 2013 (January/February 2014)*,

Malik, Anas, 'Pakistan in 2013: A Milestone in Democratic Transition', *Asian Survey, Vol. 54, No. 1, Survey of Asia in 2013 (January/February 2014)*, p. 177. also see Siddiqa, Ayesha, 'The Pakistan military: searching for state and society',*Seminar* , 664, DICODING PAKISTAN,December 2014.

Shah, Aqil, (2014) 'The Army and Democracy : Military Politics in Pakistan',London, Harvard University Press

Singh,Sushant Kumar, Democracy at Gunpoint (Book Review), *Economic & Political Weekly,Vol 11*

The Times of India, New Delhi, 13 October 1999.

नैयर, कुलदीप, 'खतरे से खेलतीं बेनजीर', दैनिक जागरण, 9 मई 2007, पृष्ठ 10,